# संवित्

# स्फुलिंग

संवित् साधनायन का विमर्श-पत्र

वैयक्तिक प्रसारणार्थ
सन्तसरोवर, आबू पर्वत

पावस क्षण
विक्रम २०३२

# अग्निमीले–

"अग्निमीले पुरोहितं . . ."

आत्म–अरणिमन्थन प्रारंभ हो रहा है,
जीवन-यज्ञ मंडप में हमारा यह मंगल प्रवेश है ।

अग्नि की हमारी यह स्तुति,
दशदिशा में जृंभित होने जा रही है–
शतशत स्फुलिंग रूपों में ।

काष्ठयोग से स्फुलिंगित वह्नि
कालयोग से चित्रित संवित् –
अनन्त काल का यह जगद्वन !

क्या कमी इन्धन की इस में ?
प्रत्येक क्षण को झोंकते जावें
चिदग्निकुंड–हृदय में ।

सप्तजिह्वा प्रज्ज्वलित रहे,
उसका यह जीवन–स्तवन
चिरन्तन रहे ।

"अग्निमीले पुरोहितं . . ." सृष्टि का प्रथम स्पन्दन गा रहा है,
उस श्रुति से अपना स्वर मिला लें ।।

'संवित्स्फुलिंग' का प्रथम कण गुरू पूर्णिमा की पवित्र वेदी पर आवाहित हो रहा है। वह प्रत्येक साधक हृदय को प्रज्ज्वलित कर उसे श्री गुरुमूर्ति के चारों ओर सतत् भ्रमण करने वाली मङ्गल आरती बनादें, दिव्य दर्शन का नित्य साधन बनादें।

यह एक पत्रिका न होकर विमर्श रूप से आरहा है, ब्रह्म प्रकाश को प्रकटित, प्रसारित प्रफुल्लित करने वाली ब्रह्म की ही विमर्श शक्ति है यह विमर्श विस्तृत व्याख्याओं में नहीं होता; अपितु सूक्ष्म, सारगर्भित संकेतों में। विद्युत प्रभावत्, ओस कण के स्पर्शवत् इसका आविर्भाव और संचार अदृश्य प्रकार से अति संक्षिप्त समय में ही होता है। ब्रह्म का विमर्श स्मृति रूप है, मनन से निष्पन्न अवगति का परिष्कार मात्र है। मनन की कुछ सामग्री साधकों को उपलब्ध हो इस उद्देश्य से "स्फुलिङ्ग" की संज्ञा और प्रवृत्ति है।

इसमें किसी भी एक व्यक्ति का चिन्तन या कृति नहीं। सारा विषय सवित् प्रसाद रूप से ही ग्रहीत होना चाहिये। एतदर्थ 'स्फुलिङ्ग' में प्रकाशित नूतन लेख या उद्धृत वचन के मूल लेखकों के नाम नहीं दिये। विषय-चयन और प्रतिपादन शैली के प्रभाव से पाठकों के दैनिक अनुभूति-स्तर में और चिन्तन प्रकार में नैसर्गिक परिवर्तन लाना इष्ट है। अतः इन दोनों में क्लिष्टता या नूतनता प्रतीत हो तो इसे साधक वांछनीय की दृष्टि से प्रेम पूर्वक अपनायेंगे ऐसी आशा है।

'संवित्-साधनायन' की प्रगति का परिचय भी स्फुलिङ्ग के द्वारा पाठकों को मिलता रहेगा। सवित् स्फूर्ति का अनुग्रह रहेगा तो प्रति ऋतु-सन्धि में एक स्फुलिङ्ग प्रकट होता रहेगा।

# संविन्मूर्ति

**एकेन चापमपरेण-करेण बाणान्,**
**अन्येन पाशमितरेण सृणिं दधाना।**
**आनन्द-कन्दलित-विद्रुम बालवल्ली,**
**संविन्मयी स्फुरतु काचन देवतामे ।।**

वह कोई ( अनिर्वचनीय ) संवित् स्वरूप दिव्य शक्ति मेरे अन्दर प्रकाशित हो—जो एक हाथ में इक्षुदण्ड का चाप, दूसरे में पांच पुष्पों का बाण, तीसरे में पाश और चौथे में अंकुश लिये ( ऐसी ललित, कोमल व लावण्यमयी ) प्रतीत होती है, मानो आनन्दरूपी कन्द से अंकुरित होकर फैली हुई तरुण प्रवाल लता है।

★★★

सवित् साधक के लिये देवविग्रह किसी व्यक्ति का नहीं अपितु एक तत्त्व का, विश्वात्मा की एक स्थिति का भान कराता है। जैसे लौकिक वार्ता में कहा जाता है कि उसका चेहरा उतर गया या आसमान झुक गया; यहाँ उतरने या झुकने की क्रिया का आरोप भाव विशेष को प्रकट करने के लिये है। इसी प्रकार पाद हस्तादि आकृति एवं नटन, गमन आदि कृति ईश्वर तत्त्व के प्रतिपादनार्थ उसमें ही कल्पित हैं। साधक रसिक व कलाज्ञ होकर उसका अनुसन्धान करे, भक्त देवतत्त्व-रहस्यज्ञ होकर उसकी उपासना करे।

★

ऊपर वर्णित संवित् स्वरूप श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी या ललिताम्बा या राजराजेश्वरी नाम से उल्लेखित है। उनके हाथ का इक्षुदण्ड-चाप मन को या मेरुदण्डान्तर्गत सुषुम्ना नाड़ी में प्रवाहित होने वाली मानस शक्ति को द्योतित करता है। उसमें शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध ये पांच विषय बाण रूप से अन्वित होकर व्यवहारात्मक प्रपंच बनते हैं। विषय वासना-रूप से मन में है। मन की चेतना शक्ति ही उसे बहिर्वत् प्रक्षिप्त करती है। इस प्रकार परमेश्वर की क्रिया शक्ति जगत रूप हो जाती है।

अंकुश विचार या ज्ञान शक्ति का प्रतीक है। उसी से रागद्वेषादि मदमत्त गज वशीभूत होते हैं। पाश रूपी स्नेह या इच्छा शक्ति से सारे प्राणी वशीभूत होते हैं।

इस आध्यात्म-त्रिशक्ति का प्रयोग-प्रदर्शन करती संवित्देवी उपासक हृदय पीठ पर आसीन है। दूर से ऐसा लगता है कि सागर बीच चट्टान पर विद्रुम वल्ली फैली हुई है, क्योंकि उसका शरीर, वस्त्र, माल्य, आभूषण लेप आदि सब मूँगे के वर्ण जैसे हैं।

यह अरुणिमा क्यों ?

★

## आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवितोयनम्—

उठो और व्यापक हो जाओ। उठना और व्याप्त होना यही आन्तर जीवन की प्रक्रिया है। गंगोत्री से गंगासागर तक का प्रवाह हमारे दर्शन व सेवन का विषय है। पर यह उस दिव्य सरिता की अधूरी कहानी है, अर्द्ध शरीर है। समुद्र से हिमाद्रि तक की उन्नत अदृश्य गति को भी समझना चाहिये। जीवन गंगा के प्रसंग में यह ऊर्ध्व गति ही तुम्हारा कर्त्तव्य है। पूर्वोक्त गति तो ब्रह्म का स्वभाव है जो कि जगत उद्धार लीला में अपनी विशुद्ध असंस्पृष्ट अनन्त चिदम्बर प्रतिष्ठा से बिन्दु होकर अवतरण करते रहते हैं।

उस अवरोहण में अपने आरोहण के मिलने पर ही तुम्हें जीवन चित्र की पूर्णता प्राप्त होगी।

उठो और शिवको अपने धवल धाम से, पिघलने दो--उछलने दो।

आरोहणमाक्रमणं . . .।

★

## "क्या प्रारब्ध को काट सकते हैं ?"

इसका सीधा उत्तर देने के पूर्व प्रारब्ध को समझना आवश्यक है। जीव के पूर्वकृत कर्मों का फल, ईश्वर अपनी काल शक्ति द्वारा जीव के सम्मुख उपस्थित करते हैं। वस्तुएँ व व्यक्ति, अनुभव दिलाने के लिये जीव की इन्द्रियों के सम्पर्क में आते हैं। इसके साथ-साथ



ही उस जीव के चित्त में उस वस्तु या व्यक्ति के प्रति राग या द्वेष का संस्कार जाग्रत होता है। इससे जीव को सुख या दुःख का अनुभव होता है।

वस्तु का आना, संस्कार का उत्थित होना व सुख दुःख का अनुभव होना इन तीनों के पीछे प्रारब्ध कर्म की प्रेरणा है। यह प्रेरणा हमेशा जाग्रत रहती है– यह प्रतिक्षण सक्रिय है।

प्रारब्ध एक विकास है, कोई निर्धारित परिनिष्पन्न पदार्थ नहीं जो हमारे काटने कूटने में आसके–जैसे लिखे हुए शब्द मिटाये जा सकते हैं, बनी हुई चीज बिगाड़ी जा सकती है। प्रारब्ध शक्ति से ही सब घटित होते हैं। घटित होने पर ही हम प्रारब्ध के साथ व्यवहार कर सकते हैं।

अतः प्रारब्ध को लेकर कुछ भी करें –तिरस्कार या स्वीकार—उससे वह बाधित नहीं। वह पुरुष के भोग परिणामों को साधता जाता है।

प्रारब्ध जिस जिस को सिद्ध करता है उसे जीव अपनाता जाता है। उस अपनाने के प्रकार में वह अपनी कुशलता या परिष्कार, नूतनता या प्रगति को प्रकट करता है। इस प्रकटन की सामर्थ्य जीव के स्वरूप गत चैतन्य की सहजसिद्ध शक्ति है। इसी को पुरुषार्थ कहते हैं। प्रारब्ध खेत है तो पुरुषार्थ खेती है।

## इति शुश्रुम धीराणां।

शिष्य — जीवन का लक्ष्य क्या है ?

गुरु — यह कि तुम उसका पता लगाओ।

शि. — पता लगने पर वह क्या सिद्ध होगा ?

गु. — वह होगा ही नहीं।

शि. — जीवन निरुद्देश्य है।

गु. — ऐसा कहीं कहा तो नहीं।

शि. — तो जीना क्या होता है ?

गु. — तुम जानते हो कि मैं जीवित हूं। फिर यह प्रश्न बनता कैसे ?

शि. — मैं जीने से जीवित हूँ—पर इसी को अच्छी तरह से जानना चाहता हूँ।

गु. — अच्छी तरह से श्वास लो, अच्छी तरह से अन्न खाओ, अच्छी तरह से हाथ पैर चलाओ मन को काम में लो।

शि. — इसमें अच्छाई क्या ?

गु. — तुम्हारे जानने में अच्छाई क्या थी ?

स्पष्टता कहें, अन्दर का धुँधलापन मिट जाय ! वही इसमें समझो। जब तक प्रत्येक स्पन्दन में स्पष्टता न आजाय तब तक प्रयास करो। जीवन का संपूर्णतया जीने से पता लगेगा। प्रश्न पूछना, सोचना, समझना उसका एक क्षुद्र अंगमात्र है।

★

शि. — जगत क्यों है ?

गु. — अन्न किसके लिये ?

शि. — क्षुधित के लिये।

गु. — क्षुधित कौन ?

शि — जो अन्न की खोज में है।

गु. — जगत को ढूँढ़ने पर जगत सिद्ध होता है।

शि. — यह ढूँढ़ना कैसे समाप्त होगा ?

गु — क्षुधा की निवृति जैसे।

शि — पर भूख ( क्षुधा ) बार--बार लगती है।

गु. — यदि अहं ही अन्न हो गया तो !

शि. — तब तो अन्न नित्य प्राप्त है।

गु — क्षुधा नित्य अनुदित है।

शि. — उसके बाद !

गु — वह सामगान करता रहता है—

अहमन्न–महमन्न–महमन्नादो– हमन्नादो--हमन्नादः !



Of the Samvit ablaze in the universal mind each inspired thought is a spark *( sphulinga )*. That is what this bulletin is supposed to be stuffed with—a concise but fiery material, a few gleaming points to ponder upon and make inward life catch fire.

So let not the reader take this as the beginning of a regular magazine. There will be no essays and elaborations; only certain hints and sketches of Samvit—more moods than words, more reflections than statements. And all articles will be unsigned. Even quotations will be without references to the originals. For here we are anxious to enter into the universal mind that has no name, no personality; neither clime nor time. Here we are face to face with Samvit. Let Samvit speak to Samvit. Let the reader accept and use the material of these pages in this spirit. Let the reader also enrichen the experience by participating in the development of Samvit expressions and by contributing to the flashes in *Sphulinga.*

Besides the Samvit matter, as a bulletin, *Sphulinga* will carry reports of Sadhanayana's activities and aspirations for the benifit of sadhaka's information.

The first 'spark' very significantly emanates from the holy alter of the Guru-poornima. Through the sustenance of the Guru's inspiration we hope to be warmly welcomed by a sphulinga at each turn of the six seasons. ॐ

## Namo Gurubhyah

A giant tree on the spiritual summit setting off the expanse of God—and yet you came down to bloom as an orchid in the hollow of my life's tree !

Master, you made me see the mountain in a clod of earth and the beauty of the spreading universe in a spray of flower.

Salutations to you.

Consciousness torn to shreds
through conceptual thinking;
existence broken to bits
by objective realities;
bliss billowing, shimmering, ever getting lost
in the onrush of senses—
retrieve these three carefully;
in their integrated oneness discover the pattern of God.
Your God cries to you for rescue
from the devastations of your life—
the God that is your soul.

And God Himself, out of grace,
comes down to save you !
That God is the Guru.



## The Fire—

अन्तर्निरन्तर-निरिन्धन-मेधमाने
संसारमोह-परिपन्थिनि संविदग्नौ ।
कस्मिंश्चिदद्भुत-मरीचि-विकासभूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधादि-शिवावसानम् ॥

I adore the fire of Samvit which burns ever in the heart of things, destroying the darkness of samsara-moha. It feeds on no fuel and yet flourishes causing its wonderful rays to expand on all sides. In that ineffable fiery essence, let me continuously offer as oblations all principles of manifestation— from the grossest prithvi to the subtlest Sadashiva.

★

A tender hazy brightness fills the eastern skies. Begone sleep ! I shall plunge into the expanse of Aruna's visible grace—my first ablution !

Look, what a wonderous fount, spraying forth rays in endless profusion ! Each mareechi reveals a resplendent world and the dance (lasya) of the Mother is on.

A thousand blended notes of life raise an anthem to those rose-red feet of Hers. Worshipfully I follow. The golden orb climbs up the hill and smiles through the verdurous woods. Apparelled in seven-coloured vestures, the earth smiles back at Her.

This is a wordless incomprehensible play. Her vilasa is the world's vikasa and She revels in admiring Her own loveliness in countless reflections. Am I not also a mirror ? I with my own world of perceptions ? Like me and mine, countless beings and their universes glimmer in Her light.

Let me feel the bliss of Her presence that holds in its fiery grip my being consuming it along with all its becomings,—my thoughts, moods and actions. To move along the rays is to move away from the orb. So have I gone enticed by iridescent shapes, chasing them over the horizons. Mother ! I desire no advancement and I seek no retreat. Let me but sit on your lap, push back these tremendous rays and be consumed by the source. That is the beginning of the great yajna.

As it proceeds, as I keep on gazing at you, your luminous heart, I shall grow familiar. I shall know that you are the Samvit, the all-encompassing eye. Know ? But that again is a spilling ray, a spurting spark. It hides your face. Let me feel the warmth of your heart and the radiant love in the silence of my own heart, that has itself consumed all its knowings,all its aspirations and all its activites... I give up the glow for the conflagration and the flaming fire for the fuelless one !

Serenely seated in the heart of things I gaze upon the multitude; I have no fear. What is there to detest ? All are expressions of the One inexhaustible energy. In this recognition is consumed the most developed ego, the greatest of the guardians of creation. Shiva Shiva ! Here goes the final oblation to the Great Fire.

The crimson disc descends on the Western sky. But the fire suffers neither setting nor diminishing. Even during the night of dissolution when darkness envelopes darkness, Samvit remains the lone seer steeped in Her own resplendence.

**Samvit Sadhaka—**

believes in life,
never makes a negative approach;
concentrates on the immediate step,
never looks back;
has faith in God's design,
never complains;
knows how to benifit by a failure,
never regrets;
considers every blade of grass a measureless wonder,
never falls for miracle-mongers;
looks upon the entire world as Guru,
never is irreverent;
learns the symbols of the Creator's art,
never gets stuck in forms;
has no abode but the sky of Lord's love,
never gets caught !

**Through a tree to infinity :**

"The mysterious vitality of trees, the silent magic of the forest, the strange and steady cycle of its life, possess in a peculiar degree this power of unleashing the human soul : are curiously friendly to its cravings, minister to its inarticulate needs. Unsullied by the corroding touch of consciousness, that life can make a contact with the 'great life of the All'; and through its mighty rhythms man can receive a message concerning the true and timeless World of 'all that is, and

was, and evermore shall be.' Plant life of all kinds, indeed from the 'flower in the crannied wall' to the 'Woods of Westermain' can easily become, for selves of a certain type, a 'mode of the Infinite'."

## Of The Ayana

Anniversary of Samvit Sadhanayana and Somashrama, Santasarovar, Mount Abu :

The waters of Santasarovar had dried up completely and the withered wilderness gave to the surrounding hills a grab of mourning. News of water scarcity in Abu due to failure of rains had already reached devotees coming from outside. So we had our own misgivings in organising a three-day Samvit spanda. But all this was washed away by a flood of enthusiasm and devoted service.

Sadhakas arrived from far and near; help came from unexpected quarters and all arrangements were complete on the 23rd of May when the spanda was inaugurated with Ganesha pooja and classical music. Sri Swamiji's discoruse was in a mood set to the pattern of hills around. He recalled the passing away of the great Samvit Master, Sri Shankara Bhagavatpada, and the spirit of his entire life-work which permeates us and our aspirations even today. "Our entire culture was built by such men of goodness and simplicity, the 'Kings of beggers' who posseased nothing and were nourished only by the grace of God. Even now our national foundations are being protected by them. Each one of us in an intrinsic manner must attain to this sannyasa and work in utter freedom ready to lay down everything and depart the moment we are called. The 'Bull' that came to take Shankara will come to us also. Perhaps even now it is at the door. Each one of us has to mount and ride, out to Kailasa. The Samvit Jayanti is but a rehearsal of that."



The following two days prayer-meeting was conducted in the morning. After brief instructions in prayer, the theme and technique of meditation were enunciated. In the forenoon of 24th May all took part in the havana, marking the conclusion of special recitations of Devi Mahatmya (शतचंडी) conducted over the preceding nine days by pundits. In the evening the same day three speakers discussed variously the problems of sadhana from social view-point. Sri Swamiji in his concluding talk stressed upon the need of providing a firm basis for mind's efforts towards life's fulfilment and compared it to Vishnu becoming the tortoise to support the devas' churning rod in the ocean of milk. God alone is able to accomplish this through His subtle nature of being form-ful and form-less at the same time. Samvit sadhana is not a conutinous pestering of God to make Him drop the butter in the mouth; it is a churning of life with God as its support-less support.

The forenoon of 25th May was devoted to a discussion on "My approach to God — its form and essence." It was a lively treat to hear the participants, each one drawn from a different field of life, earnestly offer their estimation of their own sincere attempts to unravel the loftiest principle of their lives. The evening's public meeting that day was begun with sitar recital and bhajan by devotees and students of the Samvit-Bal-Mandal. Report for the year was read by one of the trustees of the Santasarovar Trust. A song-form of Samvit preaching was introduced by a sadhaka and Sri Swamiji concluded with an address calling upon all to dis-

cover the Samvit-Sutra that intergrates all phases of an individual's life and ultimately leads to the oneness of all beings.

★

Celebrations to come :

| | |
|---|---|
| 23rd July, Wednesday | Guru–poornima |
| 21st August, Thursday | Raksha–bandhan |
| 29th August, Friday | Krishna–janmashtami |
| 9th September, Tuesday | Ganesha–jayanti |
| 10th Sep., Wednesday | Ṛishi-panchami |
| 19th Sep., Friday | Ananta–chaturdashi |